समकालीन पारिवारिक मूल्यः राष्ट्र निर्माण के संदर्भ में

डॉ. विवेक पाठक

सहायक प्रोफेसर, भारतीय ज्ञान परम्परा केंद्र, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence Author: डॉ. विवेक पाठक

Received 1 Apr 2026; Accepted 12 May 2026; Published 29 May 2026

DOI: https://doi.org/10.64171/JSRD.5.S3.61-65

सारांश

आधुनिक समाज में पारिवारिक मूल्यों में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। पहले संयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित थी, जिसमें सहयोग, त्याग, सम्मान और सामूहिकता जैसे मूल्य प्रमुख थे। आज के समय में एकल (न्यूक्लियर) परिवारों की संख्या बढ़ने से व्यक्तिवाद, स्वतंत्रता और निजी जीवन को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। इन बदलते मूल्यों का राष्ट्र निर्माण पर गहरा प्रभाव पड़ता है। परिवार व्यक्ति का पहला विद्यालय होता है, जहाँ से वह नैतिकता, अनुशासन, जिम्मेदारी और सामाजिक व्यवहार सीखता है। यदि परिवार में सकारात्मक मूल्य जैसे सम्मान, सहिष्णुता, ईमानदारी और सहयोग सिखाए जाते हैं, तो वही गुण नागरिक के रूप में राष्ट्र के विकास में योगदान देते हैं। हालाँकि, आधुनिकता और वैश्वीकरण के प्रभाव से पारिवारिक संबंधों में दूरी, बुजुर्गों की उपेक्षा, और नैतिक मूल्यों में गिरावट जैसी समस्याएँ भी देखने को मिल रही हैं। इससे सामाजिक एकता और नैतिकता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। फिर भी, बदलते समय के साथ कुछ सकारात्मक परिवर्तन भी हुए हैं, जैसे महिलाओं की शिक्षा और स्वावलंबन, लैंगिक समानता, और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का बढ़ना। ये परिवर्तन भी राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः आवश्यक है कि हम पारंपरिक और आधुनिक मूल्यों के बीच संतुलन बनाए रखें। मजबूत पारिवारिक मूल्य ही एक सशक्त, नैतिक और प्रगतिशील राष्ट्र के निर्माण की नींव होते हैं।

मूलशब्दः पारिवारिक मूल्य, संयुक्त परिवार, एकल परिवार, राष्ट्र निर्माण, नैतिकता, आधुनिकता, वैश्वीकरण, समानता, जिम्मेदारी

1. परिचय

परिवार को किसी भी समाज की प्राथमिक और मूलभूत सामाजिक संस्था माना जाता है। यह वह प्रथम सामाजिक इकाई है जहाँ व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा सामाजिक विकास प्रारंभ होता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से परिवार को समाजीकरण की केंद्रीय संस्था कहा गया है, क्योंकि यहीं व्यक्ति सामाजिक मूल्यों, मानदंडों और भूमिकाओं को आत्मसात करता है (मैकाइवर एवं पेज, 1962, पृष्ठ 215)। भारतीय सामाजिक संरचना में परिवार केवल रक्त–संबंधों का समूह नहीं रहा है, बल्कि यह संस्कारों, परंपराओं, मूल्यों और सांस्कृतिक चेतना का एक सशक्त माध्यम रहा है (कार्वे, 1965, पृष्ठ 34)।

भारतीय समाज में परंपरागत रूप से संयुक्त परिवार प्रणाली ने कर्तव्यबोध, अनुशासन, परस्पर सम्मान, त्याग और सामूहिक उत्तरदायित्व जैसे मूल्यों को पीढ़ी–दर–पीढ़ी संप्रेषित किया है। यही मूल्य व्यक्ति के चरित्र निर्माण के साथ–साथ सामाजिक स्थिरता और राष्ट्रीय एकता को भी सुदृढ़ करते रहे हैं (श्रीनिवास, 1995, पृष्ठ 112)। राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में परिवार की भूमिका इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि परिवार में अर्जित नैतिक और सामाजिक मूल्य आगे चलकर नागरिक चेतना, विधि–पालन, सामाजिक सहभागिता तथा लोकतांत्रिक आचरण के रूप में अभिव्यक्त होते हैं (बॉटमोर, 1972, पृष्ठ 89)।

समकालीन युग में तीव्र सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी परिवर्तनोंकृ जैसे औद्योगीकरण, नगरीकरण, वैश्वीकरण और सूचना–प्रौद्योगिकी के विस्तारकृने पारिवारिक संरचनाओं और मूल्यों में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन, एकल परिवारों का विस्तार तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर बढ़ता बल पारंपरिक मूल्य–संरचना को चुनौती देता दिखाई देता है (गिडेन्स, 2006, पृष्ठ 146)। इन परिवर्तनों का प्रत्यक्ष प्रभाव राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया पर भी पड़ता है, क्योंकि पारिवारिक मूल्यों में आया परिवर्तन नागरिकों के सामाजिक व्यवहार और राष्ट्रीय प्रतिबद्धता को प्रभावित करता है। अतः प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य बदलते पारिवारिक मूल्यों का विश्लेषण करते हुए उनके राष्ट्र निर्माण पर पड़ने वाले प्रभावों को श्रेणीवार स्पष्ट करना है, ताकि यह समझा जा सके कि किस प्रकार संतुलित, मूल्य–आधारित और उत्तरदायी पारिवारिक व्यवस्था एक सुदृढ़ एवं समावेशी राष्ट्र की आधारशिला रख सकती है।

2. परिवार की अवधारणा और सामाजिक महत्व

परिवार समाज की वह प्राथमिक और मूलभूत सामाजिक संस्था है जहाँ व्यक्ति का समाजीकरण प्रारंभ होता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से परिवार को समाज की आधारशिला माना गया है, क्योंकि यही वह प्रथम इकाई है जहाँ व्यक्ति सामाजिक मूल्यों, मानदंडों, परंपराओं और व्यवहार प्रतिमानों को सीखता है। मैकाइवर और पेज के अनुसार, परिवार एक स्थायी सामाजिक समूह है जो लैंगिक संबंधों पर आधारित होता है तथा जिसका उद्देश्य संतानों का पालन–पोषण और समाजीकरण करना होता है (मैकाइवर एवं पेज, 1962, पृष्ठ 215)। परिवार का सामाजिक महत्व इस तथ्य में निहित है कि यह सामाजिक नियंत्रण की प्रमुख संस्था के रूप में कार्य करता है। परिवार के माध्यम से ही व्यक्ति में अनुशासन, आज्ञाकारिता, उत्तरदायित्व और सामाजिक नियमों के पालन की भावना विकसित होती है। सामाजिक नियंत्रण के अनौपचारिक साधनोंकृजैसे स्नेह, परामर्श और नैतिक शिक्षाकृके माध्यम से परिवार व्यक्ति के व्यवहार को दिशा प्रदान करता है (ओगबर्न एवं निमकॉफ, 1955, पृष्ठ 72)। इसके अतिरिक्त, परिवार

सांस्कृतिक संचरण का सबसे प्रभावी माध्यम है। भाषा, रीति–रिवाज, धार्मिक विश्वास, नैतिक मूल्य और सामाजिक परंपराएँ परिवार के माध्यम से ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती हैं। भारतीय संदर्भ में परिवार ने सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है (कार्वे, 1965, पृष्ठ 41)।

परिवार का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करना है। व्यक्ति को प्रेम, अपनापन, सहयोग और मानसिक संतुलन परिवार से ही प्राप्त होता है। यह भावनात्मक स्थिरता व्यक्ति को समाज में सकारात्मक भूमिका निभाने के लिए प्रेरित करती है (गुड, 1982, पृष्ठ 18)। इस प्रकार, परिवार न केवल व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में सहायक होता है, बल्कि सामाजिक स्थिरता और राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में भी केंद्रीय भूमिका निभाता है।

2.1 भारतीय संदर्भ में परिवार

भारतीय समाज में परिवार की अवधारणा केवल जैविक या कानूनी संबंधों तक सीमित नहीं रही है, बल्कि यह कर्तव्य, त्याग, अनुशासन और सामूहिकता जैसे मूल्यों पर आधारित एक नैतिक–सांस्कृतिक संस्था के रूप में विकसित हुई है। परंपरागत भारतीय सामाजिक व्यवस्था में परिवार को धर्म, कर्तव्य और संस्कार की प्रथम पाठशाला माना गया है, जहाँ व्यक्ति को सामाजिक भूमिकाओं और दायित्वों की शिक्षा प्राप्त होती है (कार्वे, 1965, पृष्ठ 28)।

संयुक्त परिवार प्रणाली भारतीय समाज की एक प्रमुख विशेषता रही है। इस व्यवस्था के अंतर्गत कई पीढ़ियाँ एक साथ निवास करती थीं, जिससे न केवल आर्थिक संसाधनों का साझा उपयोग संभव होता था, बल्कि पारिवारिक सहयोग और सामाजिक सुरक्षा भी सुनिश्चित होती थी। इरावती कर्वे के अनुसार, संयुक्त परिवार ने भारतीय समाज में सामाजिक स्थिरता और सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है (कार्वे, 1965, पृष्ठ 28)।

भारतीय परिवार व्यवस्था में बुजुर्गों के प्रति सम्मान, आज्ञाकारिता और पारस्परिक सहयोग को विशेष महत्व दिया गया है। यह व्यवस्था व्यक्ति में सहनशीलता, सामंजस्य और सामूहिक निर्णय की प्रवृत्ति को विकसित करती है (श्रीनिवास, 1995, पृष्ठ 104)। इसके अतिरिक्त, धार्मिक अनुष्ठान, संस्कार और पर्व–त्योहारों के माध्यम से सांस्कृतिक परंपराएँ पीढ़ी–दर–पीढ़ी संप्रेषित होती रही हैं। इस प्रकार भारतीय संदर्भ में परिवार न केवल सामाजिक संस्था है, बल्कि वह सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक एकता का भी आधार रहा है।

2.2 परिवार और राष्ट्र निर्माण का संबंध

परिवार और राष्ट्र निर्माण के बीच गहरा और अविभाज्य संबंध है। राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया केवल राजनीतिक या आर्थिक ढाँचों तक सीमित नहीं होती, बल्कि इसका आधार नागरिकों के नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक गुणों में निहित होता है। ये गुण व्यक्ति सबसे पहले परिवार में ही अर्जित करता है। परिवार में विकसित मूल्यकृजैसे ईमानदारी, सहिष्णुता, सहयोग, अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्वकृआगे चलकर नागरिक चेतना के रूप में प्रकट होते हैं (बॉटमोर, 1972, पृष्ठ 91)।

परिवार व्यक्ति को सामाजिक नियमों और विधि–पालन की प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करता है। सामाजिक नियंत्रण के अनौपचारिक साधन, जैसे स्नेह, अनुशासन और नैतिक मार्गदर्शन, व्यक्ति को उत्तरदायी नागरिक बनने की दिशा में प्रेरित करते हैं (ओगबर्न एवं निमकॉफ, 1955, पृष्ठ 75)। जब परिवार में लोकतांत्रिक मूल्योंकृजैसे संवाद, समानता और परस्पर सम्मानकृका विकास होता है, तब वही मूल्य व्यापक सामाजिक और राजनीतिक जीवन में भी प्रतिबिंबित होते हैं। राष्ट्र की एकता और समरसता भी पारिवारिक मूल्यों पर निर्भर करती है। परिवार में सीखी गई सहिष्णुता और विविधता के प्रति सम्मान सामाजिक सौहार्द और राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करता है (गिडेन्स, 2006, पृष्ठ 152)। इसके विपरीत, जब पारिवारिक संस्थाएँ नैतिक उत्तरदायित्व और सामाजिक प्रतिबद्धता को विकसित करने में असफल होती हैं, तब इसका नकारात्मक प्रभाव सामाजिक विघटन और राष्ट्रीय एकता पर पड़ता है। अतः यह स्पष्ट है कि सशक्त, मूल्य–आधारित परिवार व्यवस्था ही सुदृढ़ राष्ट्र निर्माण की आधारशिला रखती है।

3. पारंपरिक भारतीय पारिवारिक मूल्य

पारंपरिक भारतीय समाज में पारिवारिक मूल्यों का एक सुदृढ़ और सुव्यवस्थित ढांचा विद्यमान रहा है, जिसने सामाजिक जीवन को संतुलित, अनुशासित और संगठित बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारतीय परिवार केवल निवास या आर्थिक सहयोग की इकाई नहीं था, बल्कि वह नैतिक शिक्षा, सांस्कृतिक परंपराओं और सामाजिक दायित्वों का केंद्र रहा है। समाजशास्त्रियों के अनुसार, पारंपरिक भारतीय परिवार ने व्यक्ति के चरित्र निर्माण और सामाजिक स्थिरता को सुनिश्चित करने में आधारभूत भूमिका निभाई है (कार्वे, 1965, पृष्ठ 52)। भारतीय सामाजिक दर्शन में धर्म, कर्तव्य और सामूहिकता को जीवन के मूल सिद्धांतों के रूप में स्वीकार किया गया है, जिनका व्यावहारिक प्रशिक्षण परिवार के माध्यम से ही प्राप्त होता था (श्रीनिवास, 1995, पृष्ठ 118)।

3.1 कर्तव्यबोध और अनुशासन

पारंपरिक भारतीय परिवार में कर्तव्यबोध और अनुशासन को अत्यंत महत्वपूर्ण मूल्य माना गया है। परिवार व्यक्ति को उसके सामाजिक और नैतिक कर्तव्यों के प्रति जागरूक करने की प्रथम संस्था रहा है। माता–पिता, बुजुर्गों और परिवार के अन्य सदस्यों के माध्यम से व्यक्ति को यह सिखाया जाता था कि उसके अधिकारों के साथ–साथ कर्तव्य भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं (मैकाइवर एवं पेज, 1962, पृष्ठ 221)। अनुशासन पारिवारिक जीवन का अभिन्न अंग था, जो व्यक्ति के आचरण, व्यवहार और जीवन–शैली को नियंत्रित करता था। यह अनुशासन दंड पर नहीं, बल्कि नैतिक शिक्षा, परंपरा और सामाजिक अपेक्षाओं पर आधारित होता था। इस प्रकार परिवार व्यक्ति को आत्म–नियंत्रण और सामाजिक मर्यादा का पालन सिखाता था (ओगबर्न एवं निमकॉफ, 1955, पृष्ठ 80)।

3.2 परस्पर सम्मान और त्याग

परस्पर सम्मान और त्याग पारंपरिक भारतीय पारिवारिक मूल्यों की प्रमुख विशेषताएँ रही हैं। बुजुर्गों के प्रति सम्मान, माता–पिता की आज्ञा का पालन तथा पारिवारिक संबंधों में विनम्रता को अत्यधिक महत्व दिया गया। यह सम्मान केवल आयु के आधार पर नहीं, बल्कि अनुभव, ज्ञान और नैतिक अधिकार पर आधारित था (कार्वे, 1965, पृष्ठ 60)। त्याग की भावना पारिवारिक हित को व्यक्तिगत हित से ऊपर रखने की शिक्षा देती थी। व्यक्ति अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं को परिवार की आवश्यकताओं के अनुरूप ढालना सीखता था। यह त्याग सामाजिक सहयोग, सहनशीलता और सामूहिक जीवन–बोध को विकसित करता था, जो सामाजिक एकता के लिए आवश्यक है (श्रीनिवास, 1995, पृष्ठ 121)।

3.3 सामूहिक उत्तरदायित्व

पारंपरिक भारतीय परिवार में सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना अत्यंत सशक्त थी। परिवार को एक इकाई माना जाता था, जहाँ निर्णय, उत्तरदायित्व और उपलब्धियाँ सामूहिक होती थीं। आर्थिक, सामाजिक और नैतिक दायित्वों का निर्वहन संयुक्त रूप से किया जाता था, जिससे आपसी सहयोग और सुरक्षा की भावना प्रबल होती थी (गोउड 1982, पृष्ठ 24)। यह सामूहिकता व्यक्ति को केवल स्वयं के बारे में नहीं, बल्कि पूरे परिवार और समाज के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करती थी। इसी भावना ने सामाजिक स्थिरता, पारस्परिक विश्वास और सामाजिक उत्तरदायित्व को सुदृढ़ किया, जो आगे चलकर राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में भी सहायक सिद्ध हुआ (बॉटमोर, 1972, पृ. 94)

4. समकालीन सामाजिक परिवर्तन और पारिवारिक मूल्य

आधुनिक युग में तीव्र सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी परिवर्तनों ने पारिवारिक मूल्यों की संरचना और स्वरूप को गहराई से प्रभावित किया है। औद्योगीकरण, नगरीकरण, वैश्वीकरण और सूचना–प्रौद्योगिकी के विस्तार ने पारंपरिक पारिवारिक ढाँचों को पुनर्परिभाषित किया है। परिणामस्वरूप परिवार के भीतर संबंधों की प्रकृति, भूमिकाओं का निर्धारण तथा मूल्य–प्रणाली में उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं (गिडेंस, 2006, पृ. 145)। ये परिवर्तन केवल निजी जीवन तक सीमित नहीं हैं, बल्कि इनके सामाजिक और राष्ट्रीय प्रभाव भी व्यापक हैं।

4.1 औद्योगीकरण और नगरीकरण

औद्योगीकरण और नगरीकरण समकालीन सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख कारक रहे हैं। औद्योगिक विकास के साथ रोजगार के नए अवसर नगरों में केंद्रित हुए, जिसके कारण ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर बड़े पैमाने पर पलायन हुआ। इस प्रक्रिया ने संयुक्त परिवार प्रणाली को कमजोर किया और एकल परिवारों के विस्तार को प्रोत्साहित किया (ओगबर्न और निमकोफ, 1955, पृ. 96)।

नगरों में सीमित आवास, जीवन की तीव्र गति और आर्थिक प्रतिस्पर्धा ने पारिवारिक जीवन को अधिक व्यक्तिगत और व्यावहारिक बना दिया। संयुक्त परिवार में विद्यमान सामूहिकता, पारस्परिक सहयोग और पीढ़ीगत संवाद में कमी आई। इसके परिणामस्वरूप पारिवारिक नियंत्रण और नैतिक अनुशासन की पारंपरिक प्रणालियाँ भी प्रभावित हुईं (श्रीनिवास, 1995, पृ. 136)। हालांकि, औद्योगीकरण ने आर्थिक आत्मनिर्भरता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बढ़ावा दिया, जो आधुनिक समाज की आवश्यकता भी है।

4.2 वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद

वैश्वीकरण ने न केवल आर्थिक संरचनाओं को बदला है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों पर भी गहरा प्रभाव डाला है। वैश्विक संचार, बाजार व्यवस्था और उपभोक्तावादी संस्कृति के विस्तार ने पारिवारिक संबंधों को भी प्रभावित किया है। उपभोक्तावाद ने भौतिक सुख–सुविधाओं और व्यक्तिगत उपलब्धियों को प्राथमिकता दी, जिससे पारिवारिक मूल्यों में व्यावहारिकता और स्वार्थ की प्रवृत्ति बढ़ी (बाउमान 2001, पृष्ठ 28)।

इस प्रवृत्ति के कारण पारंपरिक मूल्योंकृजैसे त्याग, सामूहिक उत्तरदायित्व और पारस्परिक निर्भरताकृमें क्रमिक क्षरण देखा गया। संबंधों की गुणवत्ता की अपेक्षा उनकी उपयोगिता पर अधिक बल दिया जाने लगा। परिणामस्वरूप पारिवारिक संबंध अधिक औपचारिक और कम भावनात्मक होते गए (गिडेंस 2006, पृष्ठ 15)। यद्यपि वैश्वीकरण ने सांस्कृतिक विविधता, नए विचारों और जीवन–शैली को अपनाने के अवसर प्रदान किए, किंतु इससे पारिवारिक मूल्यों के समक्ष नई चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुईं।

5. बदलती पारिवारिक संरचनाएँ

पारिवारिक संरचना में हुए परिवर्तन पारिवारिक मूल्यों के स्वरूप और अभिव्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। समकालीन समाज में आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप पारंपरिक पारिवारिक ढाँचों में उल्लेखनीय बदलाव देखने को मिल रहा है। संयुक्त परिवार प्रणाली का क्रमिक क्षरण, एकल परिवारों का विस्तार तथा पारिवारिक भूमिकाओं का पुनर्निर्धारण इन परिवर्तनों की प्रमुख विशेषताएँ हैं (गिडेंस, एंथनी 2006, पृष्ठ 158)। इन परिवर्तनों ने न केवल पारिवारिक संबंधों की प्रकृति बदली है, बल्कि मूल्य–बोध और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को भी प्रभावित किया है।

5.1 संयुक्त परिवार से एकल परिवार की ओर

पारंपरिक भारतीय समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली सामाजिक और आर्थिक जीवन की आधारशिला रही है। इस व्यवस्था के अंतर्गत कई पीढ़ियाँ एक साथ रहती थीं, जिससे पारस्परिक सहयोग, सामूहिक निर्णय–निर्माण और सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित होती थी। किंतु औद्योगीकरण, नगरीकरण और रोजगार–केंद्रित पलायन की प्रक्रियाओं ने इस संरचना को कमजोर किया और एकल परिवारों के विस्तार को बढ़ावा दिया (ओगबर्न और निमकोफ 1955, पृष्ठ 102)। एकल परिवार व्यवस्था ने व्यक्ति को अधिक स्वतंत्रता, निजता और निर्णय–क्षमता प्रदान की है। महिलाओं की कार्य–भागीदारी और बच्चों की शिक्षा पर केंद्रित दृष्टिकोण को भी इस व्यवस्था ने प्रोत्साहित किया। तथापि, इसके साथ–साथ सामूहिकता, पारिवारिक सहयोग और पीढ़ीगत समर्थन की भावना में कमी देखी गई है (करवे 1965, पृष्ठ 68)। संयुक्त परिवार में उपलब्ध भावनात्मक और सामाजिक सुरक्षा एकल परिवारों में अपेक्षाकृत सीमित हो गई है, जिसका प्रभाव पारिवारिक मूल्यों और सामाजिक संबंधों पर पड़ा है।

6. सामाजिक एकता और राष्ट्रीय समरसता

सामाजिक एकता और राष्ट्रीय समरसता राष्ट्र निर्माण के अनिवार्य तत्व हैं। परिवार समाज की वह इकाई है जहाँ सहअस्तित्व, सहिष्णुता और विविधता के प्रति सम्मान का अभ्यास प्रारंभ होता है। पारंपरिक भारतीय परिवारों ने विभिन्न आयु–समूहों, विचारों और भूमिकाओं के बीच सामंजस्य स्थापित कर सामाजिक एकता को सुदृढ़ किया है (श्रीनिवास, 1995, पृष्ठ 149)।

जब पारिवारिक मूल्यों में क्षरण होता है, तब सामाजिक विघटन, असहिष्णुता और टकराव की प्रवृत्तियाँ बढ़ सकती हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ, भौतिकतावाद और प्रतिस्पर्धा पर अत्यधिक बल सामाजिक संबंधों को कमजोर करता है, जिससे राष्ट्रीय समरसता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है (बाउमन, 2001, पृष्ठ 33)। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक विश्वास में कमी और सामूहिक पहचान का ह्रास हो सकता है।

7. बदलते मूल्यों के सकारात्मक आयाम

पारिवारिक मूल्यों में होने वाले सभी परिवर्तन नकारात्मक नहीं होते। समकालीन सामाजिक परिवर्तन अनेक ऐसे सकारात्मक आयाम भी प्रस्तुत करते हैं, जिन्होंने पारिवारिक जीवन को अधिक समावेशी,

समानतामूलक और लोकतांत्रिक बनाया है। शिक्षा के विस्तार, संवैधानिक मूल्यों और मानवाधिकारों की स्वीकृति ने पारिवारिक संबंधों में नई चेतना का संचार किया है। इन परिवर्तनों ने न केवल व्यक्तिगत विकास को बढ़ावा दिया है, बल्कि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को भी सुदृढ़ किया है (गिडेन्स, 2006, पृष्ठ 170)।

7.1 स्त्री–पुरुष समानता

पारंपरिक पारिवारिक संरचना में स्त्रियों की भूमिका प्रायः घरेलू दायित्वों तक सीमित रही है। किंतु आधुनिक युग में शिक्षा, कानून और सामाजिक जागरूकता के प्रभाव से स्त्री–पुरुष समानता को व्यापक मान्यता मिली है। महिलाओं की शिक्षा और कार्य–भागीदारी ने पारिवारिक निर्णय–प्रक्रिया में उनकी भूमिका को सशक्त बनाया है (देसाई एवं ठक्कर, 2001, पृष्ठ 92)। स्त्री सशक्तिकरण का प्रभाव केवल परिवार तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक सुदृढ़ता में भी योगदान देता है। अमर्त्य सेन के अनुसार, महिलाओं की क्षमताओं का विकास राष्ट्र की समग्र विकास क्षमता को बढ़ाता है (सेन, 1999, पृष्ठ 189)। पारिवारिक स्तर पर समानता का अनुभव सामाजिक स्तर पर न्याय और समावेशन की भावना को प्रोत्साहित करता है, जो राष्ट्र निर्माण के लिए अनिवार्य है।

7.2 व्यक्तिगत अधिकार और आत्मनिर्भरता

आधुनिक पारिवारिक मूल्यों में व्यक्तिगत अधिकारों और आत्मनिर्भरता पर विशेष बल दिया गया है। व्यक्ति की स्वतंत्रता, निर्णय–क्षमता और आत्म–अभिव्यक्ति को लोकतांत्रिक समाज की आधारशिला माना जाता है। परिवार अब केवल नियंत्रण की संस्था न होकर सहयोग और समर्थन की भूमिका निभाने लगा है (मार्शल, 1964, पृष्ठ 97)। आत्मनिर्भरता व्यक्ति को अपने जीवन के प्रति उत्तरदायी बनाती है तथा उसमें नेतृत्व, नवाचार और सृजनशीलता का विकास करती है। यह गुण आर्थिक विकास और सामाजिक प्रगति के लिए आवश्यक हैं। जब परिवार व्यक्ति को स्वतंत्र सोच और जिम्मेदार निर्णय लेने के लिए प्रेरित करता है, तब वही मूल्य व्यापक नागरिक जीवन में भी परिलक्षित होते हैं (बेक, 2000, पृष्ठ 66)। इस प्रकार व्यक्तिगत अधिकारों की स्वीकृति और आत्मनिर्भरता का विकास राष्ट्र को अधिक सशक्त, सक्रिय और लोकतांत्रिक बनाता है।

8. पारंपरिक और आधुनिक मूल्यों के बीच समन्वय

समकालीन सामाजिक यथार्थ में न तो पारंपरिक मूल्यों की पूर्ण अस्वीकृति संभव है और न ही आधुनिक मूल्यों को बिना विवेक अपनाया जा सकता है। राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया के लिए यह आवश्यक है कि पारंपरिक नैतिक मूल्यों और आधुनिक लोकतांत्रिक आदर्शों के बीच संतुलित समन्वय स्थापित किया जाए। परंपरागत मूल्यकृजैसे कर्तव्यबोध, त्याग, अनुशासन और सामूहिक उत्तरदायित्वकृ समाज को नैतिक आधार प्रदान करते हैं, जबकि आधुनिक मूल्यकृ जैसे समानता, स्वतंत्रता और व्यक्तिगत अधिकारकृलोकतांत्रिक चेतना को सुदृढ़ करते हैं (गिडेन्स, 2006, पृष्ठ 176)। इन दोनों के संतुलन से ही एक स्थायी, समावेशी और उत्तरदायी समाज का निर्माण संभव है।

8.1 मूल्य–आधारित शिक्षा की भूमिका

मूल्य–आधारित शिक्षा पारंपरिक और आधुनिक मूल्यों के समन्वय का एक प्रभावी माध्यम है। शिक्षा केवल ज्ञान और कौशल प्रदान करने तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि उसे नैतिक, सामाजिक और नागरिक मूल्यों के विकास का भी माध्यम बनना चाहिए। जॉन ड्यूई के अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य लोकतांत्रिक मूल्यों और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को विकसित करना है (ड्यूई, 1916, पृष्ठ 87)। विद्यालय और विश्वविद्यालय परिवार के बाद दूसरी महत्वपूर्ण समाजीकरण संस्थाएँ हैं। यदि शिक्षा–प्रणाली में ईमानदारी, सहिष्णुता, संवैधानिक मूल्य और सामाजिक सेवा को समाहित किया जाए, तो पारिवारिक मूल्यों के क्षरण को काफी हद तक संतुलित किया जा सकता है (एनसीईआरटी, 2019, पृष्ठ 12)। मूल्य–आधारित शिक्षा व्यक्ति को आलोचनात्मक चिंतन के साथ नैतिक निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है, जो राष्ट्र निर्माण के लिए आवश्यक है।

8.2 परिवार और राज्य की संयुक्त भूमिका

पारंपरिक और आधुनिक मूल्यों के समन्वय में परिवार और राज्य की संयुक्त भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। परिवार व्यक्ति में नैतिकता, संस्कार और सामाजिक उत्तरदायित्व का बीजारोपण करता है, जबकि राज्य नीतियों, कानूनों और सामाजिक कार्यक्रमों के माध्यम से इन मूल्यों को संस्थागत समर्थन प्रदान करता है (मार्शल, 1964, पृष्ठ 103)। सरकारी नीतियाँकृजैसे शिक्षा सुधार, महिला सशक्तिकरण, सामाजिक सुरक्षा और परिवार–कल्याण कार्यक्रमकृपारिवारिक संस्थाओं को सुदृढ़ बनाने में सहायक होती हैं। साथ ही, नागरिक समाज और मीडिया भी मूल्य–संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं (सेन, 1999, पृष्ठ 201)। जब परिवार और राज्य परस्पर सहयोग करते हैं, तब पारंपरिक मूल्यों की नैतिक शक्ति और आधुनिक मूल्यों की लोकतांत्रिक चेतना एक–दूसरे को पूरक बनाती हैं। इस प्रकार, संतुलित मूल्य–समन्वय ही सुदृढ़ और स्थायी राष्ट्र निर्माण का आधार बन सकता है।

9. भविष्य की चुनौतियाँ और संभावनाएँ

समकालीन सामाजिक परिवर्तनों के संदर्भ में परिवार और राष्ट्र दोनों के समक्ष अनेक चुनौतियाँ और संभावनाएँ विद्यमान हैं। बदलती पारिवारिक संरचनाएँ, मूल्य–बोध में परिवर्तन और तकनीकी प्रभावों ने पारंपरिक सामाजिक संतुलन को प्रभावित किया है। ऐसे में परिवार और राष्ट्र को सुदृढ़ बनाने हेतु एक दीर्घकालिक, मूल्य–आधारित और समावेशी दृष्टि की आवश्यकता है। राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया तभी सफल हो सकती है, जब परिवार सामाजिक चेतना और नैतिक उत्तरदायित्व का केंद्र बना रहे (गिडेन्स, 2006, पृष्ठ 182)।

9.1 सामाजिक उत्तरदायित्व का पुनर्निर्माण

भविष्य की प्रमुख चुनौती सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का पुनर्निर्माण है। परिवार व्यक्ति में सामाजिक दायित्व, सहयोग और सामूहिक हित की चेतना विकसित करने की प्रथम संस्था है। किंतु आधुनिक जीवन–शैली, व्यक्तिवाद और प्रतिस्पर्धात्मक प्रवृत्तियों के कारण यह भावना कमजोर पड़ती जा रही है (बाउमन, 2001, पृष्ठ 41)। परिवार को पुनः सामाजिक चेतना का केंद्र बनाना आवश्यक है, जहाँ व्यक्ति न केवल अपने अधिकारों, बल्कि अपने सामाजिक और राष्ट्रीय कर्तव्यों के प्रति भी सजग हो। नागरिक उत्तरदायित्व, सामाजिक सेवा और समुदाय–केन्द्रित गतिविधियों को पारिवारिक जीवन का अंग बनाया जाए, तो यह प्रवृत्ति समाज और राष्ट्र दोनों के लिए लाभकारी सिद्ध हो सकती है (मार्शल, 1964, पृष्ठ 111)। इस प्रकार, परिवार के माध्यम से सामाजिक उत्तरदायित्व का पुनर्निर्माण भविष्य की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

9.2 सांस्कृतिक निरंतरता और नवाचार

भविष्य की संभावनाएँ सांस्कृतिक निरंतरता और नवाचार के संतुलन में निहित हैं। परंपरा समाज को पहचान और स्थिरता प्रदान करती है, जबकि नवाचार उसे गतिशील और प्रगतिशील बनाता है। यदि समाज केवल परंपरा से चिपका रहे, तो वह जड़ हो सकता है, और यदि केवल आधुनिकता को अपनाए, तो सांस्कृतिक विच्छेद का शिकार हो सकता है (श्रीनिवास, 1995, पृष्ठ 156)। परिवार इस संतुलन को बनाए रखने में केंद्रीय भूमिका निभा सकता है। सांस्कृतिक मूल्य, भाषा, रीति–रिवाज और नैतिक आदर्श परिवार के माध्यम से ही पीढ़ी–दर–पीढ़ी संप्रेषित होते हैं। साथ ही, परिवार यदि नए विचारों, तकनीकी नवाचार और लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति खुला दृष्टिकोण अपनाए, तो यह सतत विकास को संभव बनाता है (सेन, 1999, पृष्ठ 214)।

अतः यह स्पष्ट है कि परंपरा और आधुनिकता के संतुलित समन्वय के माध्यम से ही सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखते हुए नवाचार को प्रोत्साहित किया जा सकता है। यही संतुलन परिवार को सुदृढ़ करता है और राष्ट्र को स्थायी विकास की दिशा में अग्रसर करता है।

10. उपसंहार

निष्कर्षतः यह स्पष्ट होता है कि पारिवारिक मूल्य राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया की आधारशिला हैं। परिवार वह सामाजिक इकाई है जहाँ व्यक्ति के चरित्र, नैतिक दृष्टि और नागरिक चेतना का प्रारंभिक विकास होता है। सत्यनिष्ठा, कर्तव्यबोध, सहयोग, सहिष्णुता और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे मूल्य परिवार के माध्यम से ही समाज और राष्ट्र के व्यापक ढाँचे में प्रवाहित होते हैं। इस दृष्टि से परिवार न केवल सामाजिक स्थिरता का आधार है, बल्कि लोकतांत्रिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने वाली मूल संस्था भी है। वर्तमान बदलते सामाजिक परिदृश्य में पारिवारिक मूल्यों का रूपांतरण अपरिहार्य है। औद्योगीकरण, नगरीकरण, वैश्वीकरण और तकनीकी प्रगति ने पारंपरिक पारिवारिक संरचनाओं और मूल्य–प्रणाली को प्रभावित किया है। तथापि, यह परिवर्तन यदि संतुलित, मूल्य–आधारित और सामाजिक उत्तरदायित्व से युक्त हो, तो यह राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को नई दिशा और ऊर्जा प्रदान कर सकता है। परंपरा और आधुनिकता के बीच समन्वय स्थापित करते हुए परिवार को एक ऐसे नैतिक और सांस्कृतिक केंद्र के रूप में विकसित करना आवश्यक है, जो बदलते समय के अनुरूप नागरिकों को तैयार कर सके। अंततः यह कहा जा सकता है कि परिवार में निहित नैतिकता, सामाजिक प्रतिबद्धता और सांस्कृतिक चेतना ही राष्ट्र की दीर्घकालिक स्थिरता, सामाजिक समरसता और सतत प्रगति को सुनिश्चित करती है।

सुदृढ़ परिवारों पर आधारित समाज ही एक सशक्त, समावेशी और लोकतांत्रिक राष्ट्र के निर्माण की ठोस नींव रख सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. Bauman Z. Consuming life. Cambridge: Polity Press; 2001.
2. Beck U. Risk society: Towards a new modernity. London: Sage Publications; 2000.
3. Bottomore TB. Sociology: A guide to problems and literature. London: Allen & Unwin; 1972.
4. Castells M. The rise of the network society. 2nd ed. Oxford: Blackwell Publishing; 2010.
5. Desai N, Thakkar U. Women in Indian society. New Delhi: National Book Trust; 2001.
6. Dewey J. Democracy and education. New York: Macmillan; 1916.
7. Giddens A. Sociology. 5th ed. Cambridge: Polity Press; 2006.
8. Goode WJ. The family. Englewood Cliffs: Prentice Hall; 1982.
9. Karve I. Kinship organization in India. Bombay: Asia Publishing House; 1965.
10. MacIver RM, Page CH. Society: An introductory analysis. New York: Macmillan; 1962.
11. Marshall TH. Class, citizenship and social development. New York: Doubleday; 1964.
12. NCERT. Learning outcomes at the elementary stage. New Delhi: National Council of Educational Research and Training; 2019.
13. Ogburn WF, Nimkoff MF. Technology and the changing family. Boston: Houghton Mifflin; 1955.
14. Sen A. Development as freedom. Oxford: Oxford University Press; 1999.
15. Srinivas MN. Social change in modern India. New Delhi: Orient Longman; 1995.